भगवान महावीर और विश्व-शान्ति

—श्री गणेशमुनि शास्त्री

वर्तमान युग में अध्यात्म की आवश्यकता

आज का युग विकास और उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर पर अवस्थित है। विकासोन्मुखी उत्कर्ष की ध्वनि चारों ओर से कर्णगोचर हो रही है, पर इस आवेशपूर्ण परिस्थिति में मानव यह नहीं सोच पा रहा है कि उत्कर्ष और विकास की सीमा क्या है? किससे सम्बद्ध है? यह एक बुद्धिगम्य तथ्य है कि जब तक योजनाबद्ध और सुनियन्त्रित आदर्शमूलक विकास-पथ का सक्रिय अनुसरण मानव-समाज द्वारा न होगा तब तक वास्तविक उत्कर्ष के उन्नत शिखर पर दृढ़तापूर्वक चरण स्थापित नहीं किये जा सकेंगे। आज उन्नति सीमित है और प्राकृतिक प्रसुप्त शक्तियों के निगूढ़ रहस्यों को जान कर मानव ही नहीं, प्राणीमात्र को सुखशान्ति और समृद्धि की ओर गतिमान करना ही विकास या मानवोन्नति समझी जाती है। विज्ञान इसी की परिणति है। यही वैज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि है, पर इसी को अन्तिम साध्य मानने में बुद्धिमत्ता नहीं है। जीवन का लक्ष्य यहीं समाप्त नहीं होता। उसे इस प्रकार के ढाँचे की आवश्यकता है कि वह नित नूतन के प्रति आस्थावान रहते हुए भी स्थायी जगत—आध्यात्मिक क्षेत्र के प्रति उसका केन्द्रबिन्दु लक्षित होना चाहिए।

भगवान महावीर की विचार-त्रिवेणी

भगवान महावीर ने इस रत्नगर्भा वसुन्धरा पर जन्म लेकर आध्यात्मिक क्षेत्र में परिशीलन एवं मनोमंथन कर जो वैचारिक क्रान्ति की, आज भी उसके स्वर प्रकम्पित हैं। अनेक भौतिक उपलब्धियों के बावजूद आज मानव वास्तविक सुख से वंचित है। वह वर्ग-संघर्ष, शीतयुद्ध, साम्प्रदायिक द्वेष, बेकारी आदि में उलझकर स्वयं की सत्ता भी विस्मृत कर चुका है। ऐसे विकट समय में महावीर के सिद्धान्त प्रकाश-स्तम्भ हैं और हमारा पथ आलोकित कर विश्व-शान्ति एवं विश्वबन्धुत्व का संदेश दे रहे हैं।

प्रयोग व विश्लेषण के युग में यह विचित्र लगता है कि प्रयोगशाला के अभाव में महावीर ने चिरन्तन सत्यों एवं तथ्यों का प्रकटीकरण कैसे किया? वस्तुतः उनका जीवन स्वयं ही प्रयोगशाला था और उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया, आज भी चिर-नवीन है। महावीर की साधना अनुभूत चिन्तन की आधारशिला पर टिकी थी न कि थोथी कल्पनाओं पर। महावीर की विचार-त्रिवेणी में अहिंसा, अनेकान्त एवं अपरिग्रह की धाराएँ हैं जो हमारा जीवन ही बदलने में समर्थ हैं। आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त एवं व्यवहार में अपरिग्रह की प्रतिष्ठा कर महावीर ने जीवन-दर्शन को नया आयाम दिया। इनको जीवन में अपनाकर हम विश्व का वर्तमान स्वरूप ही बदल सकते हैं।

भारतीय संस्कृति की आत्मा-अहिंसा

अहिंसा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन का शाश्वत विकास अहिंसा की सफल साधना पर ही अवलम्बित है। जिस प्रकार अहिंसा तत्त्व द्वारा आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का पोषण होता है उसी प्रकार जीवन का भौतिक क्षेत्र भी सन्तुलित रह सकता है। कहने की शायद ही आवश्यकता रहती है कि अब वह केवल आन्तरिक जगत के उन्नयन तक ही सीमित नहीं है अपितु राजनैतिक क्षेत्र तक में इसकी प्रतिष्ठा निर्विवाद प्रमाणित हो चुकी है। भयाक्रांत मानव अहिंसा की ओर दृष्टि गड़ाये हुए है। विज्ञान के विकास का खूब अनुभव हो चुका है। अब वह पुनः लौट कर देखना चाहता है कि हमें ऐसे तत्त्व की आवश्यकता है जो मानवता में जीवनी शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सिंचन कर सके, उसे प्रोत्साहित कर सके और मानव-मानव में सत्ता और स्वार्थों को लेकर पनपने वाली संघर्ष परम्परा को सदा के लिए समाप्त कर आत्म-ज्योति का सर्वोत्तम पथ प्रदर्शित कर सके तभी विश्वशान्ति का सृजन सम्भव है। सिद्धान्ततः किसी भी तत्त्व को स्वीकार करने की अपेक्षा उसे जीवन के दैनिक व्यवहार में लाना वांछनीय है। उन्नति और विकास का वास्तविक रहस्य तभी प्रकट हो सकता है जब तत्त्व जीवन में साकार हो, वही परम्परा का रूप ले सकता है। सर्वोच्च निर्दोष और बलिष्ठ जीवन पद्धति मानव ही नहीं प्राणीमात्र के प्रति समत्वमूलक जीवन की दिशा स्थिर कर सकती है। जीवन भी सचमुच आज एक जटिल समस्या के रूप में खड़ा है। साथ ही राजनीति और तर्क द्वारा इसे और भी विषम बनाया जा रहा है। आध्यात्मिक जागृति के पथ पर भी प्रहार किये जा रहे हैं। पर आश्चर्य तो इस बात का है कि उन्नतिमूलक आत्मिक तत्त्व साधक तथ्यों को अन्तरंग दृष्टि से देखने का प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में सुरक्षित और शान्तिमय जीवन की स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। जीवन को जगत की दृष्टि से सन्तुलित बनाये रखने के लिए विकारों पर प्रहारों का औचित्य है, पर वे संस्कारमूलक होने चाहिए। मान लीजिए परिस्थितिजन्य वैषम्य के कारण आज हिंसा के नाम पर जो अहिंसा पनप रही है उसमें संशोधन अनिवार्य है। दो विश्वयुद्धों के हृदय-विदारक दृश्यों की पुनरावृत्ति रोकने के लिए राष्ट्रसंघ एवं संयुक्त राष्ट्रसंघ स्थापित हुए, जो हिंसा से विश्व को बचाने के लिए प्रयत्नशील रहे। भयाक्रान्त मानव की रक्षा के लिए आज अहिंसा ही आधार-स्तम्भ बन सकती है और इसी से सर्वोन्नति एवं विश्वशान्ति सम्भव है।

भगवान महावीर ने **'एगे आया'** आत्मा एक है, कहकर बताया कि सबकी आत्मा एक रूप, एक समान है। **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** के अनुसार यदि हम सभी जीवों को अपने समकक्ष एक ही धरातल पर मानें तो हिंसा ही क्यों करें। यह मेरा है, यह उसका है, मेरा लाभ अपेक्षित है, दूसरों का नहीं, ऐसी भावना ही हमें हिंसा की ओर प्रवृत्त करती है।

आज के मर्यादाहीन एवं उच्छृंखल जीवन में समरसता एवं शान्ति लाने के लिए अहिंसा ही वह आधार-शिला है जिस पर परमानंद का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। अहिंसा के परिपार्श्व में भगवान महावीर ने बताया कि प्राणीमात्र जीना चाहता है, कोई मरना नहीं चाहता। सुख सभी के लिए अनुकूल एवं दुःख प्रतिकूल है।[1] अहिंसक समाज की सफल संरचना अहिंसा से ही सम्भव है अतः अहिंसा को धर्म का मूल बताया है।[2]

हिंसा से हिंसा का विस्तार होता है। जहाँ हिंसा, सत्ता व दबाव चाहती है वहाँ अहिंसा प्रेम और शान्ति। यह साधकों का साधन ही नहीं वीरों का शस्त्र भी है क्योंकि अहिंसा में कायरता का स्थान नहीं। यही कारण है कि क्षमा को 'वीरों का भूषण' माना गया है। हिंसा को अहिंसा से, क्रोध को क्षमा से एवं अहंकार को नम्रता से जीता जा सकता है। समग्र चैतन्य के साथ बिना भेदभाव के तादात्म्य स्थापित करना ही अहिंसा है जो वस्तुतः अंधकार पर प्रकाश की, घृणा पर प्रेम की एवं वैर पर सद्भाव की विजय का उद्घोष है।

स्पष्ट चिन्तन की धारा से भगवान् महावीर ने अहिंसा के सिद्धान्त एवं व्यवहार पक्षों को एकाकार किया। उनके अहिंसादर्शन का संदेश है—पापी से नहीं पाप से घृणा करो। बुरे व्यक्ति एवं बुराई के बीच एक स्पष्ट रेखा है। बुराई सदा बुराई रहती है, कभी भलाई नहीं हो सकती। परन्तु बुरा व्यक्ति यथा अवसर भला भी हो सकता है। मूलतः कोई आत्मा बुरी नहीं होती परन्तु व्यक्ति की वैकारिक प्रवृत्तियाँ, वैर-विरोध, राग-द्वेष, घृणा, कलह आदि हिंसा के रूप ही उसे बुराई की ओर प्रवृत्त करते हैं।

वास्तव में अहिंसा नित्य, शाश्वत व ध्रुव सत्य है। जो हिंसा करता है, करवाता है अथवा कर्त्ता का अनुमोदन करता है, वह अपने साथ अर्थात् अपनी आत्मा के साथ वैरभाव की वृद्धि करता है। **'आय तुले पयासु'** अर्थात् सभी जीवों को आत्मवत् मानने का सन्देश देकर महावीर ने जो जीवनधर्म बताया वह अनुकरणीय है। ज्ञान और विज्ञान का सार यही है कि किसी प्राणी की हिंसा न की जाय।[3]

महावीर ने हमें शाश्वत सत्य और त्रैकालिक तथ्य प्रदान किये हैं जिनकी उपयोगिता आज पहले से भी अधिक है। आज हम मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में किसी को सताना, अनुचित शासन, बुरी भावना आदि को बुरा मानते हैं परन्तु २५ शताब्दियों पूर्व बंधन, अधिकभार, भक्तपानविच्छेद के रूप में इन्हें हिंसा मानना क्रान्तिकारी परिकल्पना है महावीर की। वर्तमान युग में शोषण, नौकरों से अधिक व अनुचित कार्य कराना आदि कानूनी दृष्टि से दण्डनीय हैं परन्तु उस युग में ऐसी सूक्ष्मदृष्टि से सोचना अकल्पनीय है। इसे देखकर द्रव्यहिंसा के साथ भावहिंसा की कल्पना को जमाने से पर्याप्त आगे का चिन्तन ही कहा जायगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा और प्रमाद

हिंसा शब्द का मूल हननार्थक हिंसि धातु में है। किसी जीव को प्राण से रहित करना हिंसा है। वस्तुतः प्रमाद ही हिंसा है क्योंकि प्रमादवश अर्थात् असावधानी के कारण ही हम किसी जीव को प्राणरहित करते हैं।[४] एतदर्थ महावीर ने जीवों का सूक्ष्म व वैज्ञानिक वर्णन किया[५] तथा सर्वत्र जीवों का अस्तित्व बताया। पेड़-पौधों में प्राण बताना मनुष्यों ने तभी सत्य माना जब जगदीशचन्द्र बसु ने बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इसे प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया किन्तु भगवान महावीर ने तो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि में जीव बताकर यत्नपूर्वक कार्य करने का संदेश दिया, जिससे हिंसा से बचा जा सकता है।[६]

जैन दृष्टि से किसी जीव का मर जाना ही अपने आप में हिंसा नहीं है किन्तु क्रोध, मान, माया, राग-द्वेष आदि कलुषित भावों से किसी जीव के प्राणों को नष्ट करने का विचार भी हिंसा है। यही भावहिंसा है। चूंकि हिंसा का मूलाधार कषायभाव है अतः बाह्य रूप में किसी की हिंसा न भी हो, यदि भीतर कषायभाव एवं राग-द्वेष की परिणति चल रही है तो वह हिंसा ही है।

किसी भी प्राणी के प्रति मन में दुःसंकल्पों का प्रादुर्भाव होना भावहिंसा है। यदि किसी की आत्मा में दुष्ट संकल्प जाग्रत हो गया, सद्गुणों का नाश हुआ कि भावहिंसा हो गई। भावहिंसा बड़ी हिंसा है। जिस आत्मा में कलुषित भाव उठे उसकी भी हिंसा दूसरे के साथ ही हो रही है। विचारों व भावों के उत्कर्ष-अपकर्ष के कारण ही राजर्षि प्रसन्नचन्द्र सातवीं नरक के दलिक एकत्रित करते हुए कुछ ही क्षणों में परिणाम शुद्ध होने पर केवलज्ञान, केवल-दर्शन की भूमिका पर पहुँच गये।

अहिंसा जैनधर्म का प्राण है। इसे परमधर्म मानकर जहाँ महावीर ने सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखने की शिक्षा दी है—**'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे'** वहाँ इसे संयम और तप की श्रेणी में रखा है। अहिंसा को मंगलकारी मानकर बताया है कि उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।[७] इस आधार पर हम कह सकते हैं कि अहिंसा विश्व की आत्मा है, प्राण है और है चेतना का एक स्पन्दन।

समन्वय का आधार : अनेकान्तवाद

प्रत्येक वस्तु अनंतधर्मात्मक है अतः उसको पूर्ण रूप में जान लेना असम्भव है। अपनी बात या धारणा के प्रति दुराग्रह होना एकान्तवाद है। यही कारण है कि हठवादिता और एकान्त दृष्टिकोण हमारे लिए अशांति और संघर्ष उत्पन्न करते हैं। महावीर ने विश्व को इस स्थिति से त्राण दिलाने के लिए हमें अनेकान्तवाद का सिद्धान्त दिया। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु के अनेक पक्ष हैं अतः हमें उसे अनेक दृष्टियों से देखना एवं विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यालोचन करना चाहिये।

जैसे एक व्यक्ति किसी का पिता, पुत्र, भाई, पति आदि है। उसे एक रूप में जानना ही व मानना उसका एक धर्म (अंश) ही है। किसी वस्तु के लिए एकान्ततः 'ऐसा ही है'—कहने के बजाय हमें 'ऐसा भी है' कहना चाहिए। 'ही' के आग्रह स्थान पर 'भी' के प्रयोग से वस्तु का अपेक्षा से स्वरूप प्रकट होता है। ऐसे कथन से संघर्ष नहीं बढ़ेगा और परस्पर समता, स्नेह व सौहार्द का वातावरण प्रस्तुत होगा।

अपेक्षादृष्टि से अनेकान्तवाद का नाम स्याद्वाद और अपेक्षावाद भी है। स्यात् का अर्थ है किसी अपेक्षा से और वाद का अर्थ है कथन। अर्थात् अपेक्षाविशेष से वस्तुतत्त्व का विवेचन करना ही स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद के अनुसार प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी। जैसे आत्मा कर्मानुसार मानव, पशु-पक्षी आदि रूप धारण करती है तो उसका पूर्वपर्याय नष्ट हो जाता है। दूसरी ओर चाहे कोई रूप धारण करे आत्मा सदा आत्मा ही रहेगी, कभी अनात्मा नहीं होगी। अतः इस सिद्धान्त को सप्तभंगी भी कहते हैं जिसके अनुसार किसी वस्तु को सात पक्षों से देखा जा सकता है।

१. कथञ्चित् है।
२. कथञ्चित् नहीं है।
३. कथञ्चित् है और नहीं है।
४. कथञ्चित् वक्तव्य है।
५. कथञ्चित् कहा नहीं जा सकता अर्थात् अवक्तव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. कथञ्चित् है तथापि अवक्तव्य है ।

७. कथञ्चित् है नहीं है, पर अवक्तव्य है ।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने महान् सिद्धान्त सापेक्षवाद को इसी भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है । यह उदार दृष्टिकोण विश्व के दर्शनों, धर्मों, सम्प्रदायों एवं पंथों का समन्वय करता है। किसी भी धर्म के सत्यांश को ग्रहण कर जीवन को उन्नत बनाने की प्रणाली ही अनेकांत है। जहाँ एकान्तवाद द्वेष उत्पन्न कर व्यक्ति व समाज के बीच दीवारें खड़ी करता है वहाँ अनेकान्तवाद समन्वय का प्रशस्त राजमार्ग प्रस्तुत करता है। महावीर ने बताया—यदि तुम अपने को सही मानते हो तो ठीक है, परन्तु दूसरे को गलत मत समझो। क्योंकि ज्ञान के एक अंश की जानकारी तुम्हें है तो दूसरे अंश की अन्य को भी हो सकती है। सर्वज्ञ ही उसे पूर्णतः सत्यांश से जान सकता है।

सर्वोदय का मार्ग : अपरिग्रहवाद

विश्वयुद्ध की विभीषिका के बाद हम सभी विश्व-शान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं तथापि आज शीतयुद्ध का वातावरण बना ही हुआ है। कारण एक ही है आर्थिक वैषम्य। अनावश्यक और अनुचित संचय ही संघर्ष और हिंसा को प्रोत्साहन देते हैं। आज अधिक उत्पादन की ओर संसार जुटा हुआ है। दिनानुदिन आवश्यकतायें इतनी बढ़ती जा रही हैं कि उनकी पूर्ति के लिए ही जीवन समाप्त हो जाता है। उपभोग के लिए भी अवकाश नहीं मिलता। जब कि व्यक्ति स्वातंत्र्यमूलक और जनतान्त्रिक परम्परा का अनुगमन करने वाली श्रमणों की साधना ने यह संकेत दिया है कि यदि समाज और राष्ट्र में शान्ति व सन्तुलन की स्थापना करनी है तो व्यक्ति को ही सर्वप्रथम अपना आंतरिक विकास करते हुए जीवन की आवश्यकताओं को कम करना चाहिए ताकि अनावश्यक स्वार्थलिप्सा और वासनाविवर्द्धक तत्त्वों को पनपने का अवसर ही न मिले। जीवन एक ऐसी वस्तु है कि उसे किसी भी ढाँचे में ढाला जा सकता है। अपरिग्रहवाद जनतंत्र की बहुत बड़ी शक्ति है। सरल जीवन और उच्च आदर्श ही अहिंसा और अपरिग्रह का पोषण कर सकते हैं। एक ओर अट्टालिकाओं में रहकर पोषक एवं रुचिप्रद भोजन पचाने के लिए औषधियाँ प्रयुक्त की जा रही हैं तो दूसरी ओर सड़क पर पड़ा व्यक्ति भूख से दम तोड़ रहा है। इस प्रकार की भयावह असमानता दूर करने का एकमात्र उपाय है अपरिग्रह।

जहाँ व्यक्ति समाज के प्रति उदासीन होकर स्वार्थपूर्ति में केन्द्रित हो जाता है, वहाँ दूसरों के हित प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। अतः महावीर ने अनावश्यक संग्रह न करने एवं ममत्व कम करने का संदेश दिया है। संसार में झूठ, अन्याय, छल, हिंसा, संघर्ष के मूल में परिग्रह की प्रबल इच्छा है। अतः महावीर ने बताया कि सभी अनर्थों का मूल अर्थ है और आवश्यकतायें अनंत हैं।[८] इच्छा को आकाश के समान अनंत बताकर इसे परिमित करना ही अपरिग्रह है। वस्तुतः ममत्व या मूर्च्छा भाव से संग्रह करना परिग्रह है।[९] जो परिग्रह (संग्रह वृत्ति) में व्यस्त हैं, वे संसार में अपने प्रति वैर ही बढ़ाते हैं।[१०] भगवान महावीर ने सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए सक्रिय प्रयास किये हैं। उन्होंने केवल बाह्य कारणों को ही समाप्त करना पर्याप्त नहीं माना वरन् आन्तरिक मूल कारण (संग्रहवृत्ति, आसक्ति) खोजकर इसे समूल उखाड़ फेंकने की राय दी। परिग्रह को व्यक्ति सुख का साधन समझता है परन्तु उसमें आसक्त होकर दुःखी हो जाता है। अन्ततः यह ममत्व ही हमें बन्धन में डालता है।

पदार्थ उपभोग के लिए है परन्तु अनावश्यक संग्रह, आसक्ति, ममत्व, अनर्थदण्ड है। एक ओर पेटियों में बन्द वस्त्रों को कीड़े खा जाएँ और दूसरी ओर वस्त्रों के अभाव में लोग अर्द्धनग्न-सा जीवन यापन करे यह वैषम्य दूर करने पर ही शान्ति, सुख सम्भव है। परिग्रह की भावना से प्रेरित होने पर ही राष्ट्रों में युद्ध होते हैं। अतः इस मूल कारण से बचना विश्वशान्ति को आमंत्रण देना है। मार्क्स ने साम्यवाद का नारा देकर समाज को जगाया पर महावीर की विवेचना उससे भी आगे है। इसका केन्द्रबिन्दु जड़ पदार्थ नहीं, वरन् व्यक्ति स्वयं है। जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा अपरिग्रह से ही सम्भव है और अपरिग्रह की आधारशिला अहिंसा है। इसीप्रकार अनेकान्तवाद का व्यावहारिक रूप या आचारगत रूप अहिंसा है। अतः समता-धर्म की साधनारूप यह त्रिवेणी परस्पर आबद्ध विचारों की शृंखला ही है।

उपसंहारात्मक : एक दृष्टि

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भगवान महावीर के सिद्धान्तों का पालन कर हम विश्वबन्धुत्व की पृष्ठभूमि में विश्वशान्ति स्थापित कर सकते हैं। जहाँ महावीर ने जन्मगत एवं वर्णगत भेदभाव मिटाने के लिए समाज को नई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि दी वहाँ व्यक्ति को अपना आचार व व्यवहार सुधारने के लिए नया आयाम दिया। परिवर्तित मूल्यों के वर्तमान युग में भी महावीर के संदेश उतने ही नवीन एवं प्रभावशाली हैं जितने शताब्दियों पूर्व। आवश्यकता है कि हम इन सिद्धान्तों पर जीवन-धारा मोड़ दें और विश्वशान्ति के प्रवेश द्वार पर पहुँचें।

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ-स्थल

१ सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया, दुह पडिकूला, अप्पियवहा। —आचा० १।२।३.

२ अहिंसा मूलो धम्मो।

३ एवं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा संमयं चेव, एतावंत वियाणिया॥
—सूत्रकृतांग श्रु १, अ० १, गा० ६

४ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा। —तत्वार्थसूत्र ७/८

५ उत्तराध्ययन सूत्र, अध्य० ३६.

६ जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पाव-कम्मं न बन्धई॥ —दशवै० ४/८

७ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥ —दशवै० १/१

८ इच्छाहु आगाससमा अणंतिया। —उत्त० अ० ६/४८

९ मुच्छा परिग्गहो वुत्तो। —दशवै० ६/२१

१० परिग्गह निविट्ठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई। —सूत्रकृतांग १/६/३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org